IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 26, Issue 12, Series 1 (December, 2021) 73-79
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

जैन मत में पंचमहाव्रत की अवधारणा

डॉ० रेखा पाण्डेय
एसो0 प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, दर्शन विभाग भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय लखीमपुर–खीरी

सारांशः

जीव–मात्र सुखापेक्षी होता है। यही नहीं वह सुख की निरन्तरता एवं शाश्वता चाहता है। यह एषणा मनुष्य की प्रकृति है। परन्तु, आज कोई भी व्यक्ति, कोई भी राष्ट्र सुखी नहीं दिखलाई देता। पूरे विश्व में सर्वत्र शंका, भय और अविश्वास का राज्य है। जिन भयावह स्थितियों में आज मनुष्य अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, ऐसी भयावह स्थितियों का उसे शायद उस समय भी सामना न करना पड़ा हो जब वह असभ्य और जंगली कहलाता था। समाज में व्याप्त आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष के कारण मानव–अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। यद्यपि इस खतरे को जन्म मनुष्य ने ही दिया है, फिर भी वह इससे त्रस्त है और छुटकारा चाहता है। वह शान्ति पाना चाहता है। परन्तु हास्यास्पद बात यह है कि जिन साधनों से शान्ति मिल सकती है उन्हीं से वह दूर भागता है। आज मानव–समाज की स्थिति उस रोगी की तरह है जो अपने रोग का कारण जानता है किन्तु उसमें इतनी क्षमता नहीं कि वह उन कारणों को दूर कर सके। आज जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्रीयता, भाषायी–विघटन, आर्थिक लोलुपता, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, नैतिक और चारित्रिक पतन आदि समस्याएं सुरसा के मुख की भांति निरन्तर फैलती जा रहीं हैं। इसका मुख्य कारण है– मनुष्य के आचार–विचार की अशुद्धता। जैन धर्म–दर्शन में आचार और विचार की शुद्वता पर बहुत बल दिया गया है। मनुष्य शुद्ध आचार–विचार के द्वारा ही अपना तथा समाज का कल्याण कर सकता है।

मुख्य शब्दः

जैन धर्म–दर्शन, अणुव्रत, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, मोक्ष, मानव–अस्तित्व, विश्व कल्याण।

जैन धर्म शुद्ध आचरण हेतु गृहस्थ और सन्यासी दोनों के लिए पंचमहाव्रतों का उपदेश करता है। यह पंचव्रत हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। जैन धर्म में अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया गया है। मनुष्य का मन, वचन तथा कर्म से हिंसा का पूर्ण परित्याग की 'अहिंसा' है। असत्य वचन का परित्याग करना अथवा जो वस्तु जिस रूप में विद्यमान हो उसे उसी रूप में कहना की 'सत्य' है। किसी प्रकार की चोरी न करना ही 'अस्तेय' है। संसार के समस्त विषयों से सच्चा वैरागय ही 'अपिग्रह' है तथा कामवासनाओं का परित्याग ही 'ब्रह्मचर्य' है। चारित्रिक उन्नति हेतु इन व्रतों का पालन आवश्यक है। 'व्रत' का अर्थ प्रतिज्ञा करना है। अतः मनसा–वाचा–कर्मणा इन व्रतों के पालन की प्रतिज्ञा करना मनुष्य का कर्तव्य है।

यद्यपि जैन धर्म गृहस्थों (श्रावकों) तथा सन्यासियों (श्रमणों) दोनों के लिए पंच महाव्रतों का उपदेश करता है किन्तु इन व्रतों में गृहस्थों के लिए कभी–कभी वस्तुस्थिति के विचार से शिथिलता ही दिखाई गई है। यथा – गृहस्थ के लिए अपरिग्रह का अर्थ है परिमिति परिग्रह। किन्तु सन्यासी के लिए इसका अर्थ है– सम्पत्ति का पूणर्तः त्याग। गृहस्थों के लिए पंचमहाव्रत 'अणुव्रत' के रूप में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि संसार में रहते हुए इन महाव्रतों का पूर्णतः पालन करना सम्भव नहीं। आंशिक रूप से पालन करने के कारण उसके व्रत 'अणुव्रत' कहलाते हैं।

पंचमहाव्रतों की विस्तृत व्याख्या ध्यातव्य है–

1. अंहिसा–

''अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमं तपः।

अहिंसा परमं सत्यं, ततो धर्मः प्रवर्तते।।''[1]

'तत्रहिंसा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः[2] अर्थात् सभी प्रकार से, समस्त कालों में, सभी प्राणियों के चित्त में भी द्रोह न करना अहिंसा है।

यद्यपि सभी धर्म–दशनों में अहिंसा का गौरवपूर्ण स्थान है। इसे परम धर्म बताया गया है। किन्तु जैन धर्म–दर्शन का प्राण ही अहिंसा है। जैन धर्म के पहले अहिंसा को वेदों तथा उपनिषदों में एक नैतिक सद्गुण के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु कहीं–कहीं यज्ञों में हिंसा की स्वीकृति भी दी गई थी। जैन दर्शन प्रत्येक परिस्थिति में अंहिसा के पालन पर बल देता है। उनका अहिंसामय जीवन का सन्देश तथा अहिंसा से उत्पन्न समता (जीव मात्र की समानता) के वायुमण्डल में पनप सकने वाले सच्चे आदर्शवाद की स्थापना मानव–इतिहास को अमूल्य देन है।

अहिंसा का निषेधात्मक अर्थ–'अहिंसा' का शाब्दिक अर्थ है– 'हिंसा का निषेध'। निषेधात्मक अर्थ के रूप में अहिंसा है– उर्ध्वलोक, अधोलोक तथा तिर्यग्लोक इन तीनों लोकों में जितने भी त्रस (गतिशील) एवं स्थावर जीव हैं, उनके प्राणों का नाश न करना।

अहिंसा का भावात्मक अर्थ–

भावात्मक रूप में अहिंसा का अभिप्राय 'प्रेम' है। समस्त जीवों के प्रति प्रेम,सहानुभूति एवं न्याय की भावना ही अहिंसा का आधार है। जैन धर्म में अहिंसा की व्याख्या दोनों अर्थो में की गई है। वस्तुतः अहिंसा का भाव इतना व्यापक है कि इसमें सत्य, अस्तेय, दया, सहानुभूति, क्षमा आदि भावों का समावेश स्वयं हो जाता है।

केवल प्राण लेना ही हिंसा नहीं, दुःख देना भी हिंसा ही है। इसलिए जैनियों के अनुसार किसी जीव को किसी प्रकार का दुःख न देना तथा अपने–पराये की भेद–दृष्टि से दूर रहते हुए समस्त प्राणियों के प्रति समानता का भाव रखना ही अहिंसा है।[3] अहिंसा के सम्बन्ध में एक प्रबल तर्क है कि– ''दूसरे जीवों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि हम उनसे अपने प्रति चाहते हैं।'' यदि हम दूसरों से अपेक्षा रखते है कि वे हमें दुःख न पहुंचायें तो हमें भी दूसरों को दुःख नहीं पहुंचाना चाहिए।

जैन धर्म में मन–वचन और कर्म तीनों से अहिंसा का पालन अनिवार्य बताया गया है। साथ ही यह कहा गया है कि तीनों अवस्थाओं में हमें न स्वयं हिंसा करनी चाहिए (कृत), न दूसरे से करवाना चाहिए (कारित), और न हिंसक कार्य का अनुमोदन करना चाहिए (अनुमिति)। हिंसा करने से पूर्व हिंसा का विचार मन में उत्पन्न होता है। यह विचार ही हिंसा को जन्म देता है। जैन धर्म–दर्शन में हिंसा के विचार को 'भाव हिंसा' तथा उसे क्रियान्वित करने को 'द्रव्यहिंसा' कहा गया है। वाणी और कर्म विचार की ही अभिव्यक्ति हैं। अतः जैनियों ने वैचारिक हिंसा को ही मूल हिंसा कहा है। तत्वार्थसूत्र में कहा गया है कि– ''प्रमत्तयोगात् प्राणव्यरोपणं हिंसा''[4] अर्थात् प्रमत्त योग–प्रमाद से अर्थात् राग–द्वेष की वृत्ति से प्राणी के प्राणों का विनाश करना हिंसा है। इतना ही नहीं, दूसरे के प्राणों को आघात पहुँचाने की अथवा दूसरे का बुरा करने की स्थूल क्रिया न हो तब भी दूसरे का बुरा सोचने मात्र से भी हिंसा का दोष लगता है। झूठ, चोरी, बेईमानी, धूर्तता, क्रोध, लोभ, छल, दम्भ, मद, मत्सर, द्वेष आदि विकार हिंसा रूप होने से पाप हैं। अतः ऐसे हिंसारूप पापों से बचना ही अहिंसा है।

जैन विचारक सभी स्थानों तथा समस्त वस्तुओं में, यहाँ तक कि जड़–चेतन सभी में जीव का निवास मानते हैं। किसी जीव को क्षति न पहुँचाने की शिक्षा देते हैं, परन्तु व्यवहारिक जीवन में अहिंसा के इतने उच्चादर्श का पालन सम्भव नहीं। इसी लिए जैन धर्म में सामान्य लोगों के लिए 'अणुव्रत' का प्रावधान है जिसमें पारिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिए आंशिक मात्रा में हिंसा करने की अनुमति दी गई है। हिंसा को जीवन का नियम न बनाकर कम से कम हिंसा से किस तरह निर्वाह किया जाये ऐसे मार्गो की खोज का प्रयत्न करना चाहिए। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये स्थावर जीव कहे गये हैं। जीवनचर्या में इनका उपयोग सतत् अपेक्षित है। अतः गृहस्थ के अहिंसा अणुव्रत में उनकी हिंसा के त्याग का समावेश नहीं है। गृहस्थों के लिए आवश्यक है कि वे स्थूल (त्रस द्वीन्द्रियादि) जीवों का संकल्प से अर्थात् जान–बूझकर न हिंसा करे और न करायें।[5]

स्थूल हिंसा के चार प्रकार है–

1. संकल्पी– किसी निरपराध प्राणी की जानबूझ कर हिंसा करना संकल्पी हिंसा है।

2. आरम्भी– घर, दुकान, खेत आदि के आरम्भ–समारम्भ में, रसोई आदि प्रवत्तियों में सावधानी रखने पर भी त्रस जीवों की जो हिंसा होती है वह आरम्भी हिंसा कहलाती है।

3. उद्योगी– द्रव्योपार्जन में जो हिंसा होती है वह उद्योगी हिंसा है।

4. विरोधी– दुष्ट व्यक्ति से बचने के लिए तथा स्व–पर की रक्षा के लिए जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा कहलाती है। इन चार प्रकार की हिंसाओं में से संकल्पी हिंसा से गृहस्थ को अनिवार्यतः बचना चाहिए।

जैन धर्म में अहिंसा–व्रत पालन के अन्तर्गत पांच समितियों (सावधानियों) का निर्देश किया गया है–

1– ईर्या समिति, ऐसे मार्ग पर चलना जहाँ छोटे कीड़े–मकौड़े भी न कुचले जा सकें।

2– एषणा समिति, भोजन में किसी प्रकार भी छोटे कीड़ों की हिंसा न हो सके।

3– भाषा समिति, कटु भाषा बोलकर किसी की हिंसा व क्लेश न पहुंचाना।

4– व्युत्सर्ग समिति, मल–मूत्र ऐसे स्थान पर त्याग करना जहां कीटाणुओं की हिंसा न हो।

5– आदान अपेक्षा समिति, अपने सामानों का उपयोग करते समय जीवाणुओं की हिंसा न होने देना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहां एक ओर सन्यासियों के लिए अंहिसा व्रत का प्रत्येक परिस्थिति में कठोरता से पालन करना अनिवार्य है।, वहीं गृहस्थ जीवन में व्यवहारिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम मात्रा में हिंसा की छूट देना जैन धर्म की उदारता एवं दूरदर्शिता का परिचायक है। अहिंसा एक आध्यात्मिक बल है। यह बल मानव– समाज में जितना खिले उतना ही उसका आध्यात्मिक, धार्मिक तथा भौतिक विकास हो सकता है। अहिंसा को अखिल विश्व के लिए पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यह डूबते हुए प्राणी को बचाने के लिए द्वीप के समान है, भूखों को भोजन के समान, समुद्र में जहाज के समान और रोगियों के लिए औषधि के समान है। यही नहीं अहिंसा इनसे भी अधिक कल्याणारी है। अहिंसा अमृत है, अमृत का अक्षय कोष है और हिंसा गरल है, गरल का भण्डार है। वास्तव में अहिंसा ही जीवन का मूल मंत्र है।

2– सत्य–

सत्य सर्वप्रतिष्ठित तत्व है। धार्मिक तथा सामान्य जन इसे परम धर्म तथा भगवान का रूप बताते हैं। जैन धर्म दर्शन में अहिंसा के बाद सत्य के पालन को एक व्रत माना गया है। मिथ्या वचन के परित्याग को ही सत्य कहा गया है। दूसरे शब्दों में, जो वस्तु जैसी हो अथवा जैसी हुई हो वैसा कहना ही सामान्यतः सत्य है। परन्तु धार्मिक द्रष्टि से सत्यादिता का आदर्श 'सूनृत' है। 'सूनृत' अर्थात् ऐसा सत्य जो हितकारी और प्रिय हो। मनु ने भी कहा है–

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात्, सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः ।।[6]

अर्थात् सत्य बोलना चाहिए। अप्रिय या कटु सत्य कभी नहीं बोलना चाहिए। यही सनातन धर्म है। जैनियों के अनुसार प्रिय और हितकारी सत्य ही बोलना चाहिए। इस प्रकार मनु और जैन धर्म दोनों ही कटु सत्यवादिता से अधिक प्रिय सत्य वचन पर बल देते हैं। इसका कारण यह है कि कटु या यथार्थ सत्य बोलने से कभी–कभी अहिंसाव्रत का उल्लंघन हो सकता है। अतः जो 'सत्य' सत्य होने पर भी अहितकर हो उसे असत्य ही समझना चाहिए। [7] महाभारत में भी कहा गया है कि 'असत्य बोलने पर यदि प्राणियों की रक्षा होती हो तो उस समय वह असत्य सत्य है। और यदि उस समय सत्य बोला जाये तो वह असत्य है।'[8] उदाहरण के लिए, शिकारी के पूछने पर यदि कोई मनुष्य जानते हुए भी उसे विपरीत मार्ग बताता है या 'मैं नहीं जानता' कह कर निर्दोष की रक्षा करता है तो यह धर्मतः सत्य है।

महावीर स्वामी सत्य की महत्ता को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हुए कहते हैं कि– 'तं सच्चं भगवं'[9] अर्थात वह सत्य ही भगवान है। गांधी जी ने भी कहा था कि 'सत्य ही ईश्वर है।' वस्तुतः महावीर स्वामी और गांधी जी की यह दृष्टि परमार्थवादी है। परमार्थ दृष्टि लोकदृष्टि है और सर्वोपकारी है। सत्याचरण मनुष्य के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। जीवन का ध्येय जीवन को शुद्ध और उन्नत बनाना है। असत्य उसे नीचे गिराता है। मनुष्य राग, मोह, द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि

के कारण असत्य का भाषण करता है परिणामस्वरूप बंधनग्रस्त हो जाता है । अतः असत्य का त्याग आवश्यक है। सत्य मुक्तिपथ पर ले जाने वाला होता है। सत्य भाषण समाज में विश्वास स्थापित करता है जबकि असत्य अविश्वास। अविश्वास व्यक्ति और समाज दोनों के लिए घातक है। महावीर स्वामी ने कहा है कि 'इस संसार में सभी साधु महापुरूषों ने असत्यवादन की घोर निन्दा की है क्योंकि वह मनुष्यों के मन में अविश्वास उत्पन्न करने वाला है। अतः असत्य वचन का परित्याग करना चाहिए।[10] इतना ही नहीं महावीर स्वामी ने दूसरे के हृदय को आघात पहुंचाने वाले वचनों की भी निन्दा की है। यथा–'प्रज्ञावान साधक, क्रोध, लोभ, भय, हास्य अथवा विनोद में पापकारिणी पाप का अनुमोदन करने वाली और दूसरों के मन को दुःख पहुंचाने वाली भाषा का बोलना छोड़ दें।[11] क्योंकि कांटा या कील के चुभ जाने पर कुछ देर ही पीड़ा होती है, परन्तु कठोर वाणी की चोट चिरकाल तक हृदय को पीड़ा पहुंचाने वाली होती है। अतः वाणी पर सदैव संयम रखना चाहिए।

जैन धर्म में सत्य के अतिचार की ओर भी संकेत किया गया है। जैसे– किसी की निन्दा, किसी की गुप्त बात को प्रकट करना, किसी के विश्वास को डिगाना और मिथ्या उपदेश आदि वर्जित हैं। यद्यपि जैन धर्म सत्य के मन–वचन–कर्म से पालन की शिक्षा देता है। उसके अनुसार मनुष्य को मन–वचन–कर्म तीनों से ही असत्य का प्रयोग न स्वयं करना चाहिए और न दूसरों से करवाना चाहिए। परन्तु व्यवहारिक जीवन में अहिंसा की भांति ही सत्य का कठोर आचरण असम्भव प्रतीत होता है। इसका पालन भी अपवाद रहित नहीं हो सकता। इसलिए जैन धर्म दर्शन में इस सत्यव्रत के पालन में कुछ अपवाद बताये गये हैं। जैसे– रोगी अथवा पागल व्यक्तियों के हित के लिए, न्याय संगत रहस्य छुपाने के लिए, अन्याय अथवा अनुचित प्रतिज्ञा को भंग करने के लिए असत्य बोलने से दोष नहीं लगता।[12] इसके अतिरिक्त बालक अथवा दूसरों के साथ मृदु एवं निर्दोष हास्य–विनोद में कुछ क्षण के लिए असत्य बोलना भी क्षम्य है। किन्तु तिरस्कार वृत्ति से अन्धे को अन्धा कहना, मूर्ख को मूर्ख कहना असत्य है। दुर्भावना से या मिथ्या आवेशवश कटु शब्द बोलना, हंसी करना यह सब असत्य में समाविष्ट है। अतः स्पष्ट है कि अपवादस्वरूप परिस्थिति को छोड़कर अन्य परिस्थिति में सत्य का आचरण ही मनुष्य का परम कर्तव्य है। सत्याचरण निज के उत्थान के साथ–साथ विश्व शान्ति में सहायक हो सकता है।

3. अस्तेय–

अस्तेय का अर्थ है– चोरी न करना। अर्थात् दूसरे की सम्पत्ति का अवैधानिक अपहरण न करना ही अस्तेय है। जैन आगमों में अस्तेय को 'दत्तादान' तथा इसके विपरीत स्तेय को 'अदत्तादान' कहा गया है। बिना दी हुई अथवा बिना अनुमति के किसी की भी वस्तु लेना चोरी है। श्रमण (साधु) अस्तेय महाव्रत को ग्रहण करते समय प्रतिज्ञा करता है कि– 'मैं आज से समस्त प्रकार के अदत्तादान का त्याग करता हूं।[13] वह द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से–ग्राम, नगर तथा अरण्य में सचित्त या अचित्त, स्थूल अथवा सूक्ष्म कोई भी पदार्थ बिना दिये ग्रहण नहीं करता।[14]

भारतीय नीतिशास्त्र में मानव जीवन के चार लक्ष्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से अर्थ (धन–सम्पत्ति) को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैनियों ने भी जीवन रक्षा के लिए अर्थ को बड़ा सहायक बतलाया है। परन्तु दूसरे के अर्थ का अनीतिपूर्वक अपहरण करना स्तेय या चोरी ही नहीं बल्कि एक तरह की हिंसा भी है। क्योंकि जिसके धन की चोरी होती है उसको पीड़ा होती है। अतः अन्यायपूर्वक धन का अपहरण न करना ही अस्तेयव्रत है।

चोरी तीन प्रकार की होती है– **शारीरिक, मानसिक और वैचारिक।** दूसरे की वस्तु को उसकी आज्ञा के बिना उठा लेना बाह्य अर्थात् शारीरिक चोरी है। मन से किसी की चीज पाने की इच्छा करना या अच्छी चीज देखकर ललचाना मानसिक चोरी है। तथा किसी के उत्तम विचार को अपना कहना वैचारिक चोरी है। इसके अतिरिक्त समय पर कार्य न करना, कर्तव्य का ईमानदारी पूर्वक पालन न करना भी चोरी ही है। अतः अन्य व्रतों के समान इस व्रत का पालन भी मन वचन एवं कर्म तीनों से होना चाहिए। व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं न किसी प्रकार की चोरी करे और न दूसरे व्यक्तियों को किसी प्रकार से चोरी करने के लिए उत्साहित करे। महावीर स्वामी ने स्पष्ट कहा है कि 'कोई भी वस्तु चाहे सजीव हो अथवा निर्जीव, कम हो या ज्यादा, यहां तक कि वह दाँत कुतरने की सलाई के समान छोटी क्यों न हो, उसे बिना उसके स्वामी से पूछें नहीं उठाना चाहिए, न दूसरे से उठवाये और न उठाने वाले का अनुमोदन ही करे।'[15]

चोरी और कारण–

चोरी मे सहायक बनने के अनेक कारण हैं–

1. भोगों के प्रति आसक्ति

2. यश–प्रतिष्ठा की भूख

3. धन संचय की भावना

4. कम परिश्रम से अधिक धन उपार्जन की लालसा

इन वैयक्तिक कारणों के अतिरिक्त कुछ सामाजिक कारण हैं–

1. बेरोजगारी

2. भुखमरी की समस्या

3. जनसंख्या वृद्धि आदि

जैन मत में चोरी के उपर्युक्त सभी कारण निन्दनीय माने गये हैं। शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार चोरी की वस्तु खरीदना, माप–तौल में गड़बड़ी करना, कम देकर ज्यादा लेना, वस्तु में मिलावट करना, असली वस्तु के स्थान पर नकली वस्तु देना, तस्करी के लिए विरोधी राज्य में जाना– यह सब चोरी ही है।[16]

आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने इस व्रत के सम्बन्ध में कहा है कि आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति रखना भी स्तेय ही है। आवश्यकता से अधिक संचय करने का मतलब दूसरों को उनके हक से वंचित करना है। इसी दृष्टिकोण से मार्क्सवादियों ने सम्पत्ति संग्रह को चोरी कहा है। प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में भी आवश्यकता से अधिक धन संचय को अनैतिक बताया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार 'जितनी सम्पत्ति से पेट भरने का काम चल सके, उतना ही धन संचय करने का प्राणियों का अधिकार है। उससे अधिक संचय की जो चेष्टा करता है, वह चोर है।[17] स्तेय वृत्ति से बचना तथा 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श को अपनाना ही मनुष्यता है।

ब्रह्मचर्य–

ब्रह्मचर्य का अर्थ है– काम–वासनाओं का पूर्णतः परित्याग। सभी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा मन को पूर्ण नियंत्रण रखना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य व्रत पर हिन्दु और बौद्ध धर्म में भी बहुत बल दिया गया है। परन्तु जैन धर्म इस पर अन्य धर्मों की अपेक्षा कठोरतापूर्वक जोर देता है। महावीर स्वामी ने कहा है कि– ''लोगुत्तमं च वयमिणं''[18] अर्थात् यह व्रत लोकोत्तम है। सूत्रकतांग सूत्र में कहा गया है कि– 'तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं'[19] अर्थात् ब्रह्मचर्य तो उत्तम तपस्या है। यही नहीं ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, संयम और विनय का मूल है।[20]

जैन धर्म में ब्रह्मचर्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें हठपूर्वक ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति को दुराचारी और दंभाचारी कहा गया है। बाह्य रूप से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना तथा आन्तरिक रूप से अर्थात् मन से उसका चिन्तन करना ब्रह्मचर्य नहीं है। श्रीमद्भगवतगीता में भी कहा गया है कि 'जो मूढ़ पुरूष कर्मेन्द्रियों को हठ से रोककर इन्द्रियों के भोगों का मन से चिन्तन करता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दंभी है।[21] अतः जैन धर्म ब्रह्मचर्य व्रत का मन वचन तथा कर्म तीनों के पालन करने पर बल देता है उसके अनुसार 'अत्यन्त दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत के पालनकर्त्ता को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा किन्नर आदि सभी देवगण नमस्कार करते हैं।[22] 'जिसने अपने जीवन में एक ही ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना की हो उसे सभी उत्तमोत्तम व्रत की आराधना करने वाला ही समझना चाहिए।[23] ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए श्रमण तथा श्रमणी दोनों के लिए नौ प्रकार का निषेध बताया गया है।[24] दूसरे शब्दों में, इस व्रत के संक्षिप्त अंग है– दुराचारिणी स्त्रियों से बचना, अश्लील बातों का त्याग करना, शक्ति से अधिक भोग न करना आदि। महात्मा गाँधी आत्म संयम को ही ब्रह्मचर्य की संज्ञा देते हैं। ब्रह्मचर्य केवल यौन सम्बन्धी क्रियाओं से बचने मात्र तक सीमित नहीं है बल्कि विवाहितों के लिए भी इस व्रत के पालन का आदेश दिया गया है।

ब्रह्मचर्य व्रत का लक्ष्य कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त करना ही है। इन्द्रियां आसक्ति उत्पन्न करती हैं, भोगों के लिए प्रेरित करती हैं। यदि इन्द्रियों को जीत लिया जाये तो मनुष्य आसक्ति और मोह में नहीं पड़ता। फलतः मोक्ष प्राप्त करने में सफल होता है।

ब्रह्मचर्य आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, मानसिक, शारीरिक आदि सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। संसार में व्याप्त अनियमित जीवन शैली से उत्पन्न कष्टों तथा अनैतिक आचरण से बचने का एक मात्र साधन है– ब्रह्मचर्य व्रत का पालन।

अपरिग्रह–

'अपरिग्रह' का शाब्दिक अर्थ है– धन संग्रह करने की प्रवृत्ति का अभाव। परिग्रह जैन शास्त्रों के अनुसार मूर्च्छा है।[25] अपनत्व तथा अधिकार की भावना को मूर्च्छा कहा गया है। तात्पर्य यह है कि मात्र बाह्य पदार्थ परिग्रह नहीं हैं, अपितु उन पदार्थो में आसक्ति, ममत्वभाव और मेरेपन की भावना भी परिग्रह है। क्योंकि 'आसक्ति', 'ममत्व' और 'मेरा' का भाव ही परिग्रह अर्थात संग्रह की ओर प्रेरित करता है। परिग्रह दो प्रकार से होता है।

1– द्रव्य परिग्रह

2– भाव परिग्रह

धन–धान्य, सोना–चांदी, जमीन–जायदाद, पशु–पक्षी आदि बाह्य पदार्थों का परिग्रह द्रव्य–परिग्रह कहलाता है। तथा उन पदार्थों पर किया गया मोह, ममत्व, लालसा आदि का संग्रह भाव–परिग्रह कहलाता है। यह भाव–परिग्रह ही बंधन का तथा द्रव्य–परिग्रह का कारण है। यद्यपि जीवन में शारीरिक आवश्कताओं की पूर्ति हेतु बाह्य पदार्थो का उपयोग अनवार्य है। परन्तु भाव–परिग्रह से मुक्त होने के लिए बाह्य पदार्थों के उपभोग की सीमा का निर्धारण आवश्यक है। इस दृष्टिोण से धन–वैभव के अपार भण्डार होते हुए भी अनासक्त भाव से एक सीमा में अपभोग करने वाला व्यक्ति अल्प परिग्रही हो सकता है। परन्तु इसके लिए एक निर्धन व्यक्ति को हृदय में असीमित लालसाओं तथा इच्छाओं के होने के कारण महापरिग्रही कहा जा सकता है।[26] अतः परिग्रह का तात्पर्य धन का त्याग नहीं बल्कि धन में सम्पूर्ण आसक्ति का त्याग है। राजा जनक तथा स्वयं महावीर स्वामी इसके उदाहरण हैं। सन्यासी के लिए द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकार से परिग्रह त्याज्य है। महावीर स्वामी ने कहा है कि जो संग्रह करता है, करवाता है या अन्य व्यक्ति को सलाह देता है, वह दुःख से मुक्त नहीं होता है। वह संसार में अनन्तकाल तक परिभ्रमण करता रहता है।[27] 'जो मनुष्य धन को अमृत मानकर अनेक प्रकार से पापकर्मो द्वारा धन की प्राप्ति करता है वह कर्म–बन्धन में पड़ता है और अनेक जीवों के साथ वैरानुबन्ध कर अन्त में धन–ऐश्वर्य को संसार में ही छोड़कर नरक में जाता है।[28]

अतः स्पष्ट है कि मनुष्य के लिए परिग्रहवृत्ति घातक है। अपने तथा समाज के कल्याण के लिए इस वृत्ति से बचना आवश्यक है।

निष्कर्ष–

जैन धर्म–दर्शन में चारित्रिक उन्नति हेतु पंच महाव्रतों के पालन पर अत्यधिक बल दिया गया है। उसका अधिक से अधिक पालन करने से वर्तमान समय की तमाम ज्वलन्त समस्याओं का समाधान सम्भव है। यथा– पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा वैश्विक स्तर पर व्याप्त वैमनस्य भावों को समाप्त कर प्रेममय शुद्ध परिवेश का निर्माण हो सकता है। जैनों का अहिंसा सम्बन्धी विचार भ्रूण हत्या, प्रकृति का अतिदोहन, स्वाद एवं मनोविनोद हेतु जीव हत्या, स्ववर्चस्व की भावना के कारण निर्बल मनुष्य तथा निर्बल राष्ट्रों के शोषण एवं परमाणु के ढेर पर बैठे विश्व को विनाश से बचा सकता है। उनके सत्य व्रत के पालन से समाज में बढ़ते हुए अविश्वास को समाप्त किया जा सकता है और स्वस्थ परिवेश का निर्माण हो सकता है। अस्तेय की प्रवृत्ति से भ्रष्टाचार को मिटाया जा सकता है। अपरिग्रह से गरीबी दूर हो सकती है तथा वर्ग–संघर्ष समाप्त हो सकता है। ब्रह्मचर्य से समाज में फैलते हुए व्यभिचार को रोका जा सकता है तथा शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों से समाज को बचाया जा सकता है। आवश्यकता है इनमें आस्था और विश्वास रखने तथा इनके अनुसार आचरण करने की। इसके अतिरिक्त मानव अस्तित्व को बचाने और विश्व–कल्याण का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। पंचमहाव्रतों की प्रासंगिता सदा–सर्वदा रहेगी।

सन्दर्भ सूची–

1. महाभारत, अनु0 पर्व, 115.23।

2. योगसूत्र, व्यासभाष्य, 2.30।

3. जैन नीतिशास्त्र एक परिशीलन, आचार्य देवेन्द्र मुनि, पृ0 319।

4. तत्त्वार्थसूत्र, महर्षि उमा स्वामी, अ0 7, सू0 8।

5. योगशास्त्र, आचार्य हेमचन्द्र, 2.19

6. मनुस्मृति, 4.138।

7. जैन दर्शन, मुनि श्री न्याय विजय जी, पृ0 145।

8. महाभारत

9. श्री महावीर वचनामृत, पृ0 135

10. भगवान महावीर, शोभानाथ पाठक, पृ0190, 191

11. दशवैकालिक सूत्र, अ0 7, सूत्र 54

12. जैन दर्शन, मुनि श्री न्याय विजय जी, पृ0 147

13. आचरांग सूत्र, श्रुत स्कन्ध 2, अ0 7, सूत्र 607

14. दशवैकालिक सूत्र, अ0 4, सूत्र 13

15. वही, 14–15

16. उपासकदशा 1.6 अभयदेव वृत्ति, पृ0 11–13

17. श्रीमद्भागवत पुराण, 7.14.8

18. प्रश्न व्याकरण सूत्र, संवर द्वार, 4.1

19. सूत्रकृतांग सूत्र, अ0 6.23

20. प्रश्न व्याकरण सूत्र, अ0 4, श्री महावीर वचनामृत, पृ0 151

21. श्रीमद्भगवद्गीता, 3.6

22. उत्तराध्ययन सूत्र, 16.16

23. श्री महावीर वचनामृत, पृ0 151

24. उत्तराध्ययन सूत्र, 16.3–12

25. तत्वार्थ सूत्र, 7,10, दशवैकालिक सूत्र, 6.20

26. जैनाचारः सिद्धान्त और स्वरूप, श्री देवेन्द्र मुनि, पृ0 851

27. सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, 1.1, 1.2

28. उत्तराध्ययन, 4.2